निश्चित अनिश्चितताएँ, अनिश्चित निश्चितताएँ : एक अंतर्संबद्ध विश्व में भारत*

हारुन आर. खान

1. दिल्ली विश्वविद्यालय के व्यवसाय अर्थशास्त्र विभाग के 40वें कनवेंशन में आज यहाँ उपस्थित होना मेरे लिए आनन्द की बात है। मैं इस कन्वेंशन के लिए एक युक्तियुक्त विषय- 'अनिश्चितता का आलिंगन : एक अंतर्संबद्ध विश्व में भारत' चुनने के लिए विभाग को धन्यवाद देता हूँ। पिछले कुछ वर्षों की घटनाओं- वैश्विक वित्तीय संकट, सरकारी ऋण संकट और अभी हाल में अमेरिका के फेडरल रिज़र्व के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स द्वारा ''टेपरिंग'' की घोषणा के बाद प्रेरित घटनाओं, सभी ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि पूरा विश्व, विशेष रूप से वैश्विक वित्तीय प्रणाली वस्तुतः अंतर्संबद्ध है। पिछले पाँच से छह वर्षों में भी इस प्रकार की अंतर्संबद्धता से जुड़ी अनिश्चितताओं की बात सामने आयी है। वित्तीय क्षेत्र में अंतर्संबद्धता कुछ मामलों में वित्तीय क्षेत्र में लहराती हुई इक्का-दुक्का घटना की डोमिनो प्रतिक्रिया के माध्यम से आघातों को प्रवर्धित कर सकती हैं, जो सुनामी का कारण बन सकती है। लेकिन यह अनुमान लगाना कठिन है कि कौन से डोमिनो का पतन पहले होगा- और यह तो उससे भी कठिन है कि कैसे और किस हद तक प्रणाली के एक हिस्से की समस्या दूसरे हिस्सों को प्रभावित करेगी[1]।

2. पिछले वर्ष से हो रही घटनाओं ने भी निर्णायक रूप से यह सिद्ध किया है कि भारत वैश्विक वित्तीय प्रणाली से अधिकाधिक अंतर्संबद्ध हो रहा है। वर्ष 2007 में वैश्विक वित्तीय संकट के आरंभ होने के शुरुआती दिनों में लोगों में यह विश्वास पनप रहा था कि भारत शेष विश्व से बहुत हद तक वियोजित बना हुआ है। इस सबके बावजूद हमारा बाह्य क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित था और वृद्धि के चालक प्रमुख रूप से घरेलू होते थे। लेहमैन ब्रदर्स के पतन के बाद हमारी घबराहट तब बढ़ी, जब सुनामी, जिसे वैश्विक वित्तीय संकट कहा गया, भारतीय तट से टकरायी। इसने यह दर्शाया कि हम स्पष्ट रूप से विश्व अर्थव्यवस्था से कहीं अधिक एकीकृत हो चुके थे, जितना कि अब से पहले महसूस या स्वीकार किया जाता था।

3. कन्वेंशन की समय सारणी देखने से पता चलता है कि आप दिन भर में प्रभावशाली आधार वाले विषयों पर चर्चा करने वाले हैं। नीति-निर्माण के लिए वैश्विक आघातों द्वारा उत्पन्न चुनौतियों की निशानदेही करना, एक स्थिर एवं प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था के लिए भवन खंड बनाने पर विचार-विमर्श करना और भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए वृद्धि की एक परिसीमा की डिजाइन बनाना। कन्वेंशन के दौरान शामिल किये जाने वाले विषयों के प्रति न्याय किये जाने की असंभवता को देखते हुए, मैं अपनी टिप्पणियों को कुछेक विस्तृत क्षेत्र तक ही सीमित रखना चाहूँगा। पहला, मैं विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारत की अंतर्संबद्धता के पैमाने पर चर्चा करूँगा और बढ़ते एकीकरण से नीति-निर्माण के सामने आने वाली चुनौतियों को स्पर्श करूँगा। इसके बाद मैं अमेरिका द्वारा आसन्न टेपरिंग की घोषणा के बाद उत्पन्न चुनौतियों का वर्णन करूँगा, जिसमें भारतीय अनुभव पर और विश्व अर्थव्यवस्था के प्रतिवात का मुकाबला करने के लिए किये गये उपायों पर संक्षिप्त चर्चा होगी। अंत में, मैं घरेलू और अंतरराष्ट्रीय तौर पर भावी पथ के संबंध में कुछ टिप्पणियाँ प्रस्तुत करने की चेष्टा करूँगा, ताकि एक अंतर्संबद्ध विश्व से उत्पन्न अनिश्चितताओं का 'आलिंगन' किया जा सके।

बढ़ता वैश्वीकरण

4. स्वतंत्रता के पश्चात्, भारत दुनिया की बंद अर्थव्यवस्थाओं में से एक था। यहाँ तक कि 1980 के दशक तक भारत विश्व अर्थव्यवस्था के साथ अपर्याप्त रूप से एकीकृत हुआ था। अब यह एक अलग कहानी बन चुका है। आइए, मैं ऐसे कुछ पैमाने के बारे में बताऊँ, जिनका बहुधा उपयोग किसी देश के विश्व के साथ एकीकरण के मामले में किया जाता है। किसी देश के विश्व के साथ एकीकृत होने का एक मापन होता है जीडीपी में इसके बाह्य व्यापार का अनुपात। वर्ष 1972 से लेकर 2011 तक चार दशकों में यह अनुपात चार गुणा बढ़ कर आठ प्रतिशत से 37 प्रतिशत हो गया। दूसरा मापन, जो निस्संदेह अधिक पूर्ण होता है, वह है, जो देश से वस्तुओं और सेवाओं का तथा वित्त का दुतरफा प्रवाह मापता है। यह पैमाना चार दशकों

* 7 अक्तूबर 2013 को नई दिल्ली में व्यवसाय अर्थशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, साउथ कैंपस के 40वें वार्षिक कन्वेंशन में डॉ. हारुन आर.खान, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक, द्वारा दिये गये उद्घाटन भाषण पर आधारित। वक्ता भारतीय रिजर्व बैंक की सुश्री डिंपल भांडिया और श्री सुरजीत बोस के योगदान को अभिस्वीकृत करते हैं।

[1] 'इंटरकनेक्टेडनेस एंड दि इंपॉर्टेंस ऑफ इंटरनैशनल डाटा शेयरिंग' विषय पर जैमी कारूआना, महाप्रबंधक, बीआइएस, द्वारा तीसरे स्विस नैशनल बैंक-इंटरनैशनल मोनेटरी फंड कन्फरेंस में अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली के संबंध में दिया गया भाषण, ज्युरिख, जुलाई, 2012

में लगभग आठ गुणा ऊपर की ओर गया है- 1972 के 14 प्रतिशत से बढ़ कर 2011 में 109 प्रतिशत पर पहुँच गया। स्पष्टतः, भारत के विश्व के साथ अधिकाधिक एकीकृत होने पर भी इसका वित्तीय एकीकरण इसके व्यापारिक एकीकरण से गहरा हुआ है। अन्य सांख्यिकी भी है, जो इसी प्रकार का चित्र प्रस्तुत करती है। जीडीपी के प्रतिशत के रूप में सकल पूँजी प्रवाह देश के लिए लगभग 60 प्रतिशत है, हालाँकि निवल पूँजी प्रवाह महत्वपूर्ण रूप से कम है- जीडीपी का लगभग चार प्रतिशत। हाल के वर्षों में देश का चालू खाता घाटा (सीएडी) भी वर्ष 2012-13 की तीसरी तिमाही में बढ़ कर 6.5 प्रतिशत हो गया, हालाँकि उसके बाद इसमें कमी आयी। देश की निवल अंतरराष्ट्रीय निवेश स्थिति (आइआइपी) भी हाल के वर्षों में ह्रासमान अवस्था को प्राप्त होती रही है। अंतरराष्ट्रीय देयताएँ अंतरराष्ट्रीय आस्तियों की तुलना में अधिक हो कर मार्च 2013 में 309.4 बिलियन अमरीकी डालर पर पहुँच गयी, जबकि यह मार्च 2012 में 250 बिलियन अमरीकी डालर थी, हालाँकि जून 2013 में कुछ सुधार दिखाई दिया, जब निवल देयताएँ 296.9 बिलियन अमरीकी डालर पर थीं।

5. वस्तुतः, विश्व अर्थव्यवस्था के साथ बढ़ता एकीकरण भारत के लिए कोई विचित्र घटना नहीं है। वास्तव में, वैश्विक वित्तीय संकट के पूर्ववर्ती वर्षों में वैश्विक आर्थिक एकीकरण में बढ़ोतरी हुई और यह तेज गति से हुई। विश्व जीडीपी के प्रतिशत के रूप में विश्व-व्यापार जीडीपी के 20 प्रतिशत से थोडा अधिक हो कर वर्ष 2007 में 30 प्रतिशत हुआ। सीमापार पूँजी प्रवाह जीडीपी के प्रतिशत के रूप में भी 1990 के दशक के मध्य में विद्यमान लगभग पाँच प्रतिशत से बढ़ कर 2007 में लगभग 20 प्रतिशत हो गया। जैसे ही यह संकट उभरा, इस अनुपात में तेज गिरावट हुई, लेकिन उसके बाद से वैश्विक पूँजी प्रवाह में पुनःप्राप्ति हुई है। वित्तीय वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय खुलापन (जिसका मापन जीडीपी के प्रतिशत के रूप में देशों की बाह्य आस्तियों और देयताओं के हिस्से के जोड़ द्वारा किया जाता है), जो 1990 के दशक के मध्य में विश्व जीडीपी का 150 प्रतिशत था, वह दुगुना हो कर वर्ष 2007[2] में 350 प्रतिशत हो गया। वैश्विक अर्थव्यवस्था की वृहत्तर अंतर्संबद्धता अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग कार्यकलाप में प्रतिबिंबित हुई, जिसका प्रबलन इसमें मजबूत बढ़ोतरी में हुआ। इसके साथ ही वित्तीय संस्थाओं के सीमापार स्वामित्व का हिस्सा बढ़ा। बीआइएस की अंतरराष्ट्रीय बैंकिंग सांख्यिकी के अनुसार विश्व जीडीपी के हिस्से के रूप में बैंकों की आस्तियों और देयताओं का मूल्य दुगुना हो गया, जो वर्ष 1990 में 30 प्रतिशत था और 2007 में लगभग 60 प्रतिशत हो गया, जिसमें अधिकांश बढ़ोतरी 2000 के दशक में देखी गयी।

6. इस शताब्दी के प्रारंभिक भाग में वैश्वीकरण की गति तेज होने पर, इसका व्यापन कुछ दिलचस्प प्रवृत्तियों और लक्षणों से चित्रित हुआ :

i. पहला, जबकि विकसित देशों का प्रभुत्व अंतरराष्ट्रीय सीमापार प्रवाहों पर था, उभरते बाजार भी मैदान मे आ गये, जिनका हिस्सा वैश्विक पूँजी प्रवाह में वर्ष 2000 और 2007 के बीच 7 प्रतिशत से बढ़ कर 17 प्रतिशत हो गया;

ii. दूसरा, जबकि उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से उभरते बाजारों तक प्रवाह अधिकतर अनेक उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में बढ़े हुए निवेश अवसरों से और उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में कम झुकाव से चालित था, उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं से बढ़ता बहिर्वाह मुख्यतः रिज़र्व संचय द्वारा चालित था;

iii. तीसरा, बढ़ते वैश्वीकरण के साथ बढ़ा हुआ वैश्विक असंतुलन दिखाई पड़ा। जर्मनी, जापान और प्रमुख तेल उत्पादक देशों की लेनदार स्थिति मजबूत हुई, जबकि अमेरिका, स्पेन, फ्रांस, इटली और युनाइटेड किंगडम अधिक ऋणी हो गये। अधिशेष और घाटों का निरपेक्ष जोड़ 1980 में विश्व जीडीपी का लगभग दो प्रतिशत था, 2006 में अपने उच्चतम स्तर पर छह प्रतिशत से अधिक था और इस समय विश्व जीडीपी के चार प्रतिशत से अधिक है। चूँकि चालू खाता असंतुलनों का मिलान समान और विपरीत पूँजीगत लेखा असंतुलनों द्वारा किया जाता है, इसका अर्थ यह हुआ कि निवल पूँजी प्रवाह की मात्रा अधिक है- सीमापार निवल आस्ति-प्रवाह[3] ;

[2] ओईसीडी इकोनॉमिक आउटलुक, खंड 2011/1

[3] माइरॉन स्कोल्स ग्लोबल मार्केट फोरम, शिकागो विश्वविद्यालय, सितंबर, 2011 में :''ग्लोबल इंबैलेंसेजः करेंट एकाउंट्स एंड फाइनैंशियल फ्लोज'' विषय पर स्टीफन जी सेचेटी, आर्थिक सलाहकार औरअध्यक्ष, मौद्रिक और आर्थिक विभाग, बीआइएस का भाषण

iv. चौथा, जैसाकि पहले चर्चा की गयी है, व्यापार एकीकरण की तुलना में वित्तीय एकीकरण काफी हद तक गहरा हुआ, जिसके परिणामस्वरूप वित्तीय प्रवाह ने व्यापार प्रवाह को पूरी तरह अपने में समा लिया। वित्तीय आस्तियों और देयताओं का जोड़ मोटा-मोटी निर्यात और आयात के जोड़ के बराबर 1970 में था। वैश्विक वित्तीय संकट के प्रारंभ होने से वित्तीय आस्तियों और देयताओं का जोड़ निर्यात और आयात के जोड़ से कई गुणा अधिक हो गये, जो स्पष्ट रूप से सीमापार पूँजी प्रवाह में उतार-चढ़ाव की ओर इशारा करते हैं, जिनका संबंध व्यापार से नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि निवल पूँजी प्रवाह का समर्थन अधिक सकल प्रवाह से किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप विदेशी आस्तियों/देयताओं की ऊँची निवल अंतरराष्ट्रीय स्थिति बनती है;

v. पाँचवाँ, दुनिया भर में अधिकांश देशों के लिए, सही में, ध्यान निवल पूँजी प्रवाह से सकल पूँजी प्रवाह की ओर केंद्रित हुआ है। सकल पूँजी प्रवाह में निवल पूँजी प्रवाह से कई गुणा अधिक होने की प्रवृत्ति होती है। जबकि इनसे निवल पूँजी प्रवाह के समान ही जोखिमें उत्पन्न होती हैं, यथा, सहसा ह्रास और प्रत्यावर्तन, फिर भी ये जोखिमें स्पष्टतः परिमाण में बड़ी होती हैं। इस प्रकार, विनिमय दरों और आस्ति-कीमतों में उतार-चढ़ाव सकल पूँजी प्रवाह के प्रति संवेदनशील होते हैं; और

vi. छठा, वैश्वीकरण के गहरा हो जाने पर भी, आर्थिक नीतियाँ अधिकतर राष्ट्रीय बनी रहीं। यह अनिवार्य रूप से अधिप्लव और उप-इष्टतम उपायों की अगुआई करता है, जो अनिवार्य रूप से एक वैश्विक समस्या है।

7. उभरते बाजारों, यथा, भारत, के लिए इन प्रवृत्तियों का महत्वपूर्ण प्रभाव वित्तीय क्षेत्र की नीतियों का संचालन करने के लिए होता है। प्रमुख सर्वांगी महत्वपूर्ण देशों की मौद्रिक एवं विनिमय दर नीतियों का बाह्य अधिप्लव महत्वपूर्ण रहा है। घरेलू नीतियों का संचालन करने में इस प्रकार के अधिप्लव को बहिर्जात माना जाता है और इनका प्रबंध घरेलू नीतिगत उपायों द्वारा किया जाता है। इसका परिणाम अनिवार्य रूप से स्वतंत्रता में कुछ हद तक नुकसान होता है।

8. पूँजी प्रवाह का पैटर्न भी, जैसे वह विशेष रूप से संकट-पूर्व वर्षों में उभरा, महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के अनेक विचार व्यक्त किये गये हैं कि उभरते बाजारों ने जोखिमपूर्ण पूँजी का आयात किया, जबकि उन्होंने सुरक्षित पूँजी का निर्यात किया। मैं इस विंदु का चित्रण करने के लिए जोसफ स्टिगलिज के शब्दों का प्रयोग करूँगा प्रोफेसर स्टिगलिज ने 2006 के पत्र[4] में कहा था : *''वैश्विक वित्तीय प्रणाली उस तरीके से काम नहीं कर रही है, जिस तरह उसे करना चाहिए था। भौतिक विज्ञान के सामान्य नियम कहते हैं कि पानी को नीचे की ओर बहना चाहिए। इसके समानांतर अर्थशास्त्र के नियम कहते हैं कि धन का बहाव धनी देशों से निर्धन देशों की ओर होना चाहिए, और जोखिम का अंतरण गरीबों से, जो उसे बरदाश्त करने में समर्थ नहीं होते, धनियों की ओर होना चाहिए। लेकिन आज की दुनिया में सब बातें उलटी हो रही हैं। ठीक-ठीक कहा जाये, तो पिछले अनेक वर्षों से धन गरीब देशों से धनी देशों की और जा रहा है। निधियों का निवल प्रवाह उस रास्ते की विपरीत दिशा में जा रहा है, जिससे उसे जाना चाहिए था। इस बीच दुनिया के निर्धनतम देशों को ब्याज दर जोखिम और विनिमय दर अस्थिरता को सहन करने के लिए छोड़ दिया जाता है।''* हाल की घटनाएँ इसका स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। जोखिमपूर्ण प्रवाह प्रत्यावर्तित हो सकते हैं और तीव्र गति से प्रत्यावर्तित होते हैं, जो वैश्विक बोध को प्रतिबिंबित करता है, जैसे-जैसे वे रिस्क-ऑन और रिस्क-ऑफ अवस्थाओं के बीच अग्रसर होती हैं। उभरते बाजारों को अक्सर पूँजी अंतर्वाहों में अचानक उछाल और उनके प्रत्यावर्तन पर कार्रवाई करने के लिए छोड़ दिया जाता है और वे विनिमय दर और ब्याज दरों पर इसके संबद्ध प्रभाव का प्रबंध करने के लिए संघर्ष करते हैं।

9. ये जोखिमें संकट आरंभ होने के बाद से भारत को हुए अनुभव में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती हैं। ऐसे देश के रूप में, जिसका सीएडी निरंतर बना रहे, हमारे लिए पूँजी का अंतर्वाह आवश्यक होता था। लेकिन देश का अनुभव यह रहा कि इसने उछाल (वर्ष 2007-08 में जीडीपी के 9 प्रतिशत तक निवल पूँजी अंतर्वाह) और अचानक प्रत्यावर्तन (वैश्विक संकट के बाद) देखा; पुनः 2011-12 में उछाल और हाल ही में प्रत्यावर्तन देखा गया। पूँजी प्रवाह के उतार-चढ़ाव ने स्पष्ट रूप से घरेलू चलनिधि प्रबंध को अभिभूत किया है और घरेलू

[4] मेकिंग ग्लोबलाइजेशन वर्क-दि 2006 गीयरी लेक्चर जोसफ ई.स्टिगलिज, 2006

मुद्रा की विनिमय दर को अत्यधिक अस्थिर बनाया है। जबकि पुश और पुल, दोनों कारक यह इंगित करते हैं कि भारत घाटे का वित्तपोषण करने के लिए पर्याप्त पूँजी प्राप्त कर सकता है, पूँजी अंतर्वाह का पैटर्न अस्थिर बना रह सकता है और इसके प्रभाव का प्रबंध किया जाना होगा। इन चुनौतियों के साथ यह तथ्य जुड़ जाता है कि अक्सर इएमई को/से पूँजी अंतर्वाह में उछाल और अचानक बहिर्वाह जिन कारणों से होता है उनका उनके मौलिक तत्वों से कुछ लेना-देना नहीं होता। भारतीय रिज़र्व बैंक इस नीति का अनुसरण करता रहा है कि विनिमय दर को लचीला और बाजार-निर्धारित रहने दिया जाये। इसका परिणाम यह हुआ कि वैश्विक संकट के बाद तीव्र मूल्यह्रास हुआ, जिसके बाद महत्वपूर्ण मूल्यवृद्धि देखने को मिली और फिर से मूल्यह्रास हुआ। जहाँ तक विदेशी मुद्रा रिज़र्व का प्रश्न है, हम सहज स्थिति में हैं, जैसाकि हाल की घटनाओं से सिद्ध होता है, लेकिन दबाव की स्थिति में रिज़र्व के संबंध में बाजार का बोध भिन्न हो सकता है। रिज़र्व में कोई कमी होने से इसे बाजार द्वारा दबाव की स्थिति के रूप में देखा जाता है।

10. इन सभी कारकों ने वास्तविक अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित किया, जिसमें वृद्धि में महत्वपूर्ण रूप से गिरावट आयी, हालाँकि गिरावट के कुछ अंश के लिए अनेक घरेलू कारक जिम्मेवार थे। अंतर्संबद्धता के 'बोध' का बढ़ता तत्व उभर कर सामने आया है। उदाहरण के लिए, एक इएमई में गड़बड़ी का कोई संकेत दिखने पर अक्सर सभी या कई इएमई का पूँजी प्रवाह प्रभावित होता है। इसका विकृत प्रभाव अनुपातहीन रूप में प्रत्यावर्तन के प्रति होता है। इस प्रकार बहिर्जात कारकों, यथा, एक ही भौगोलिक क्षेत्र में स्थित होना या यह माना जाना कि वे एकसमान आर्थिक विकास के प्रक्रम पर हैं, के चलते देशों के बीच अंतर्संबद्धता हो जाती है। पूँजी प्रवाह की इस प्रकार की 'भेड़चाल' पुनः घरेलू नीति-निर्माण को काफी कठिन बना देती है, जबकि इसके साथ यह ऐसी अमूर्त आस्तियों के लिए किसी रूप में अंतरराष्ट्रीय सहयोग को चुनौतीपूर्ण बना देती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि देशों की अलग-अलग विशेषताएँ, ताकत और दुर्बलताओं का इसमें कोई हाथ नहीं होता। जैसाकि रूचिर शर्मा ने अपनी पुस्तक ''ब्रेकआउट नेशन्स''[5] में अत्यंत संक्षेप में कहा है, ''सभी वृक्ष आकाश की ऊँचाइयों तक नहीं बढ़ते हैं'' और ऐसे ''अनेक उभरते बाजार हैं, जो दशकों से उभरते रहे हैं''। उभरते बाजारों में संकट के बाद सामान्य अवस्था संकट-पूर्व की तुलना में अधिक सौम्य वृद्धि दर के रूप में दिखाई देगी, उन्नत देशों से पूँजी प्रवाह विवेकपूर्ण होगा, जहाँ तक समष्टि मौलिक तत्वों और अलग-अलग देश के कार्यसंपादन का संबंध है। जैसाकि मैं थोड़ा बाद में चर्चा करूँगा, चालू खाता घाटा वाले देश, जिनका मूलभूत समष्टिआर्थिक तत्व दुर्बल है, वे इस वर्ष के प्रारंभ में फेडरल रिज़र्व बोर्ड की समंजनकारी नीति से पीछे हटने की घोषणा द्वारा प्रेरित प्रतिवातों से बहुत हद तक प्रभावित हुए।

11. इस प्रकार, वित्तीय वैश्वीकरण ने अंतर्संबद्धता के परिमाण और जटिलता को उस विंदु तक बढ़ा दिया है, जहाँ प्रत्येक देश बारंबार होने वाले बाह्य आघातों से असुरक्षित बन चुका है। ये जोखिमें हमारे देश में वैश्विक वित्तीय संकट के परिणामस्वरूप आयी और हाल में फेड के आस्ति क्रय कार्यक्रम के संभावित टेपरिंग की घोषणा के बाद आयी। मैं संक्षेप में यह संकेत करना चाहता हूँ कि ये घटनाएँ अंतर्संबद्ध विश्व के साथ जुड़ी अनिश्चितताओं और जोखिमों का स्पष्ट चित्र उपस्थित करती हैं।

गैर परंपरागत मौद्रिक नीतियाँ

12. परंपरागत मौद्रिक नीतियाँ विशिष्ट रूप से ब्याज दर वक्र के अल्पावधि सिरे पर परिचालन करती हैं। वे केंद्रीय बैंक, जिन्हें न्यून और स्थिर मुद्रास्फीति बनाये रखने का अधिदेश मिला होता है, उन्होंने अल्पावधि (विशिष्ट रूप से ओवरनाइट) ब्याज दरों पर परिचालन किया, ताकि वे बैंकिंग क्षेत्र के लिए, मार्जिन पर, निधीयन लागत को प्रभावित कर सकें। अल्पावधि ब्याज दरों पर अपने परिचालनों के माध्यम से केंद्रीय बैंक यह निश्चित करने का प्रयास करते हैं कि किस प्रकार दीर्घावधि दरों सहित अन्य बाजार दरें व्यवहार करती हैं। जैसे ही वैश्विक वित्तीय संकट का विस्फोट हुआ, उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के केंद्रीय बैंकों ने असामान्य सक्रियतावाद के साथ व्यवहार किया- नीति दरों को शून्य या लगभग शून्य के स्तर पर ले आना। तथापि, जल्दी ही उन्होंने महसूस किया कि वित्तीय बाजारों में स्थिरता बहाल करने या वित्तीय बाजारों के प्रमुख खंडों की कार्यपद्धति को बहाल करने के लिए यह काफी नहीं था , वृद्धि के पुनरूत्थान की तो बात ही छोड़ दें। इस प्रकार, मौद्रिक नीति ने स्वयं को ''जीरो नॉमिनल बाउंड'' से आबद्ध पाया। आर्थिक कार्यकलाप में पतन और बढ़ती बेरोजगारी का सामना करते हुए, मौद्रिक नीति के परंपरागत साधनों का आश्रय लिये बिना,

[5] ''ब्रेकआउट नेशन्स, : इन सर्च ऑफ दि नेक्स्ट इकोनॉमिक मिरैकल'', रूचिर शर्मा, 2012

केंद्रीय बैंकों ने अनेक प्रकार के गैर परंपरागत मौद्रिक नीति उपाय किये। ये गैर परंपरागत मौद्रिक नीति उपाय दो पटलों पर आश्रित थे। विस्तारित नीति-संस्तर की तुलना में निरंतर न्यून नीति दरों का भावी मार्गदर्शन और बड़े पैमाने पर आस्ति। क्रय। ये नीतियाँ अनेक प्रकार से गैर परंपरागत थीं :

i. पहला, परिचालनों की प्रमात्रा बहुत बड़ी थी और कम से कम इसका लक्ष्य प्रारंभ में यह था कि अवरोधित बाजारों को प्रचुर चलनिधि प्रदान की जाये ;

ii. दूसरा, संपार्श्विक के मानकों में अभूतपूर्व शिथिलता देखी गयी, जिसमें केंद्रीय बैंक बंधक बांडों, कारपोरेट बांडों, वाणिज्यिक पत्रों, एक्सचेंज ट्रेडेड निधियों और स्थावर संपदा निवेश न्यासों को स्वीकार करते थे; इस अर्थ में वे अंतिम शेयर संतुलनकर्ता बन गये।

iii. तीसरा, केंद्रीय बैंकों द्वारा सीधे दीर्घावधि ब्याज दरों को प्रभावित करने का प्रयास किया गया। इसीबी ने तीन वर्ष की परिपक्वता वाले दीर्घावधि रेपो परिचालनों (एलटीआरओ) के क्षेत्र में प्रवेश किया, जबकि फेडरल रिज़र्व ने ''ऑपरेशन ट्विस्ट'' के दो दौरों की शुरुआत की, जिसमें वह अल्पावधि ट्रेजरी के विक्रय पर दीर्घावधि ट्रेजरी का क्रय करता था, ताकि संपूर्ण आय वक्र को नीचे लाया जा सके।

13. गैर परंपरागत मौद्रिक नीतियाँ उन्नत अर्थव्यवस्थाओं तक ही सीमित नहीं थीं। कुछ उभरते बाजारों ने भी संकट के प्रतिवात के प्रति नवोन्मेषी उपायों के साथ प्रतिक्रिया की, यद्यपि इन अर्थव्यवस्थाओं ने ब्याज दरों को जीरो बाउंड पर स्पर्श नहीं किया। उदाहरण के लिए, भारतीय रिज़र्व बैंक ने वर्ष 2008 में संकट के शीर्ष पर एनबीएफसी और म्युचुअल फंडों के लिए चलनिधि विंडो की व्यवस्था किये जाने की घोषणा की/परिचालन किया, ताकि इन फंडों को मोचन दबाव का प्रबंध करने में सहायता दी जा सके। पुनः, जुलाई 2013 में, हमने म्युचुअल फंडों की चलनिधि संबंधी जरूरतों के लिए एक विशेष रेपो विंडो की घोषणा की थी। इस संबंध में दूसरा नवोन्मेषी उपाय यह किया गया कि बैंकों के लिए एक रियायती विंडो की शुरुआत की गयी, ताकि वे अपनी एफसीएनआर (बी) डालर निधियों को जमाराशियों की अवधि के लिए नियत दर पर रिज़र्व बैंक के साथ अदला-बदली कर सकें।

14. गैर परंपरागत नीतियों के बहुविध उद्देश्य थे। जबकि प्रारंभिक उपायों का लक्ष्य था चलनिधि प्रदान करना और वित्तीय बाजारों के अनर्जक खंडों का पुनरुत्थान करना, अनुवर्ती उपायों का लक्ष्य था ऋण के उठाव का पुनर्स्थान करना, दीर्घावधि निवेश के लिए प्रोत्साहन देना और आर्थिक वृद्धि का पोषण करना।

15. प्रमुख उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में नीति दरें शून्य या लगभग शून्य के स्तर पर बनी हुई हैं। अमेरिका को छोड़ कर, किसी अन्य उन्नत अर्थव्यवस्था में गैर परंपरागत मौद्रिक नीति से निकास का थोड़ा-सा भी संकेत नहीं मिलता है। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के केंद्रीय बैंकों के तुलनपत्र अभूतपूर्व स्तरों तक विकसित हो गये हैं। प्रमुख उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के केंद्रीय बैंकों के तुलनपत्र इस समय जीडीपी के 20 प्रतिशत से अधिक पर स्थित हैं, जबकि वर्ष 2007 में ये 10 प्रतिशत के आसपास थे। तुलनपत्र के आकार में विस्तार के साथ-साथ केंद्रीय बैंक आस्तियों की परिपक्वता प्रोफाइल में महत्वपूर्ण दीर्घीकरण हुआ है।

16. यह तथ्य, कि लंबे समय तक समंजनकारी मौद्रिक नीति के परिणामस्वरूप जोखिमें हुईं, को समझा गया और उस पर बहस हुई। इस प्रकार की जोखिम की भी बात हुई कि संभवतः नीतियाँ कार्य नहीं करें, उदाहरण के लिए, यदि संपदा क्षेत्र और वित्तीय क्षेत्र के बीच संचार तंत्र बाधित हुआ या नीतिगत उपायों की प्रमात्रा के बारे में युक्तियुक्त निर्णय नहीं लिया गया, तो नीतियाँ काम नहीं करेंगी। तथापि, केंद्रीय बैंक अप्राधिकृत सागर में तैर रहे थे। ऐसी जोखिम थी की नीतियाँ भली-भाँति काम करें और गैर परंपरागत मौद्रिक नीति नयी सामान्य नीति बन जाये। किसी भी स्थिति में, यह बात स्पष्ट थी कि गैर परंपरागत मौद्रिक नीतियाँ, चाहे वे घोर अस्थिरता की अवधि के दौरान कितनी भी आवश्यक और औचित्यपूर्ण क्यों न लगें, वे कालक्रम में बाजार को विकृत करेंगी। उनका परिणाम होता है स्थगित तुलनपत्र समायोजन, जोखिम लेने के लिए प्रोत्साहन देना, और बढ़ी हुई सुविधा देना तथा वित्तीय बाजारों की कार्यपद्धति को विकृत करने की जोखिम, जिससे बाजार की जोखिमों का माप और कीमत निर्धारण करने की सामर्थ्य को क्षति पहुँचेगी। सबसे महत्वपूर्ण यह है कि नीतियों से निकास में भी स्पष्ट जोखिम थी। गैर परंपरागत मौद्रिक नीति से निकास के साथ जुड़ी हुई प्रमुख जोखिमें होती हैं ब्याज दरों में, विशेष रूप से दीर्घावधि ब्याज दरों में बढ़ोतरी होना। इन जोखिमों में

शामिल होती हैं बैंकों, वित्तीय संस्थाओं और रिज़र्व प्रबंधकों को उनके नियत आय संविभाग के संबंध में बड़ा नुकसान होना, ऋण जोखिम का बढ़ना, निधीयन संबंधी चुनौतियाँ और वैश्विक अर्थव्यवस्था में अधिप्लव। ये सभी ब्याज दर में नपे-तुले ढंग से और क्रमशः बढ़ोतरी के महत्व को रेखांकित करते हैं, ताकि बाजारों को समायोजन कर पाने के लिए पर्याप्त समय मिले। लेकिन जैसाकि हाल की घटनाओं से साबित हुआ, नये संतुलन तक संक्रमण सहज रीति से होना संभव नहीं लगता। अनेक वर्षों तक ब्याज दरों के लगभग शून्य के स्तर पर रहने और घटी हुई अस्थिरताओं ने परिसीमित जोखिमों पर नियंत्रण रखा है और अधिक जोखिम लेने के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया है। चूँकि दुतरफा जोखिमों के बारे में बोध वित्तीय बाजारों में वापस आया है, बाजारों में बदलते रुझानों के परिणामस्वरूप कम से कम आंशिक रूप से अतिक्रमण होगा, जिसके चलते समायोजन की प्रक्रिया आवश्यकता से अधिक कठिन होगी।

17. दुनिया भर में बाजारों में हाल की गतिविधियों से पता चलता है कि किस प्रकार निकास की प्रत्याशा महत्वपूर्ण अस्थिरता का सृजन कर सकती है। 22 मई 2013 को फेडरल रिज़र्व के अध्यक्ष बर्नांके ने घोषणा की कि अमरीकी अर्थव्यवस्था वर्ष समाप्त होने के पहले अपने आस्ति-क्रय कार्यक्रमों में क्रमशः कटौती करेगी। इस घोषणा से बाजारों में भय फैल गया। पूँजी का बड़ा बहिर्वाह, शेयर बाजारों में गिरावट, और उभरते बाजारों की विनिमय दरों में तीव्र मूल्यह्रास केवल इस कटौती की संभावना से आरंभ हो गया। 22 मई और 20 जून के बीच (19 जून को एफओएमसी के प्रेस कॉन्फरेंस के बाद, जब फेड अध्यक्ष ने क्रमशः कटौती किये जाने की योजना का खुलासा किया) उभरते बाजारों की विनिमय दरों में काफी मूल्यह्रास हुआ। मुद्रा के इस मूल्यह्रास के साथ-साथ ऋण और इक्विटी पूँजी का बड़ा बहिर्वाह भी हुआ। यह प्रवृत्ति 20 जून के बाद भी बनी रही। मोटे अनुमान के अनुसार उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं (इएमई) से 22 मई से लगभग 44 बिलियन अमरीकी डालर का बहिर्वाह अगस्त 2013 के अंत तक हुआ। प्रमुख बाजारों में घटी हुई कीमत पर बिक्री निरंतर किये जाते रहने पर भी इएमई में उच्च अस्थिरता देखी गयी। उभरते बाजारों (इएम) की इक्विटी 22 मई और सितंबर 2013 के पहले सप्ताह के बीच लगभग 11 प्रतिशत तक गिर गयी, जो महत्वपूर्ण रूप से उनके परिपक्व बाजार काउंटरपार्टों की इक्विटी की तुलना में (जो उस अवधि में केवल एक प्रतिशत गिरा) अधिक थी। उभरते और विकसित बाजारों की इक्विटियों के लिए एमएससीआइ सूचकांकों ने इक्विटी बाजारों से हाल के महीनों में स्पष्ट वियोजन दर्शाया। इएम मुद्राएँ और बांड (जैसाकि जे पी मॉर्गन इमर्जिंग मार्केट करेंसी इंडेक्स और ब्लूमबर्ग युएसडी इमर्जिंग मार्केट्स कंपोजिट बांड इंडेक्स द्वारा इंगित किया गया) इसी अवधि के दौरान लगभग सात और आठ प्रतिशत के आसपास गिरे। ये आँकड़े 22 मई और 5 सितंबर 2013 के बीच भिन्न-भिन्न बाजारों में न्यून कार्यकलाप के स्तर पर पहुँचने के द्योतक नहीं हैं। इन प्रवृत्तियों के साथ महत्वपूर्ण रूप से बढ़ी हुई अस्थिरता सभी बाजारों में देखी गयी।

18. पिछले कुछ महीनों के घटनाक्रम लगभग उसी प्रकार देखने में आये, जैसाकि पाठ्य पुस्तकों में बताया जाता है। बड़े प्रापकों की मुद्राएँ, विशेष रूप से वे, जिनका बड़ा चालू खाता घाटा होता है, दबाव में आयीं। जबकि पाठ्य पुस्तकों में सलाह दी जाती है कि मूल्यह्रास होने दिया जाये, देशों में सतर्कता की भावना आयी कि कहीं उनकी विनिमय दरें अधिक अधोमुखी न हो जायें, विशेष रूप से इस संभावना को देखते हुए कि घरेलू निगमों ने विदेशी मुद्रा ऋण को हेज नहीं किया हो सकता है। विनिमय मूल्यह्रास के मुद्रास्फीतिकारी परिणामों के बारे में भी चिंता हुई, यह चिंता कि प्रतिस्पर्धात्मकता में अल्पावधि बढ़ोतरी होने से निर्यात नहीं बढ़ेगा, जब भागीदार देश की वृद्धि मंद हो, और निर्यात के लिए आयातित मध्यवर्ती अंतर्वस्तु सामान्यतः बढ़ रही हो। यह जोखिम बनी रही कि पूँजी प्रापक देशों में अब तक कठोर मौद्रिक नीति वृद्धि को धीमा कर देगी और धीमी वृद्धि के पैटर्न को उत्तेजित कर देगी। शेयर बाजारों में काफी गिरावट हो और बनी रहे, तो वह धन-प्रभाव के माध्यम से वृद्धि को नुकसान पहुँचा सकती है। वास्तव में, अधिप्लव औद्योगिक देशों के लिए भी महत्वहीन नहीं होते हैं। जापान, जर्मनी और यूके में 10-वर्षीय दरें 22 मई 2013 के बाद प्रभावित हुईं।

भारतीय वित्तीय बाजारों में हाल की प्रवृत्ति

19. भारत में, फेड की घोषणा का प्रभाव विस्मयकारी था, जैसाकि अन्य अनेक उभरते बाजारों में देखा गया, विशेष रूप से जिनका चालू खाता घाटा होता था। भारतीय ऋण बाजार से निवल एफआइआइ विनिवेश 23 मई 2013 से (30 अगस्त 2013 तक) लगभग 10.4 बिलियन अमरीकी डालर का हुआ, जबकि 1 जनवरी-22 मई 2013 की अवधि के दौरान निवल निवेश 5.6 बिलियन अमरीकी डालर का हुआ था। भारत से इक्विटी खंड में एफआइआइ निवेश का प्रत्यावर्तन भी हुआ,

जिसमें इक्विटी में निवल एफआइआइ विनिवेश 23 मई 2013 से (30 अगस्त 2013 तक) 2.8 बिलियन अमरीकी डालर का हुआ, जबकि 1 जनवरी से 22 मई 2013 की अवधि के दौरान 14.35 बिलियन अमरीकी डालर का निवेश हुआ था। भारतीय वित्तीय बाजारों पर प्रभाव उभरते बाजारों के बीच सबसे अधिक पड़ा। 22 मई और 4 सितंबर 2013 के बीच ,

i. मुद्रा में 17.3 प्रतिशत मूल्यह्रास हुआ;

ii. भारत का इक्विटी बाजार 7.9 प्रतिशत गिरा;

iii. 10-वर्षीय ब्याज दरें 123 आधार अंक बढ़ीं;

इस अवधि के दौरान 10-वर्षीय आय लगभग 100 आधार अंक बढ़ी।

वित्तीय बाजारों की अस्थिरता का संसर्गज प्रभाव अंतर्संबद्धता के माध्यम से बाजारों में फैल गया, जिसमें रुपये का मूल्यह्रास शेयर बाजार पर भारी पड़ा, ऋण बाजार से विदेशी बहिर्वाह और बढ़ा, जिसने विदेशी मुद्रा बाजार को प्रभावित किया और आय तथा इक्विटी बाजारों को भी प्रभावित किया। सितंबर के प्रारंभ से स्थिति में काफी सुधार हुआ है, हालाँकि उच्च अस्थिरता की जोखिमें बनी हुई हैं, जिसपर मैं शीघ्र चर्चा करूँगा।

प्रेरक और चालक

20. पिछले वर्षों में पूँजी अंतर्वाह का एक प्रमुख चालक रहा था परिपक्व अर्थव्यवस्थाओं में खुली मौद्रिक नीतियों का होना, जो धन को इएम विश्व में 'धकेल' रही थी। इसको मदद इएमई में तगड़ी वृद्धि से मिलती थी, जो उन देशों में धन को 'खींच' रही थी। हाल ही में जब दोनों कारकों की ताकत नष्ट हो गयी, तब निवेशक चिंतित हो कर सहज मौद्रिक नीति से निकास के बारे में सोचने लगे, भले ही जापान में एक आक्रामक विस्तारक नीति की घोषणा की गयी थी। इसके अतिरिक्त, अनेक उभरती अर्थव्यवस्थाओं में हाल में वृद्धि का संवेग कुछ कम हुआ, जबकि परिपक्व अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि-संभावना में बढ़ोतरी हुई, इस प्रकार विकसित बाजार के निवेशकों में अपनी पूँजी बाहर भेजने का आकर्षण कम हो गया। फेड की 22 मई की टिप्पणियों ने इन कारकों को केंद्र-स्थान में ला खड़ा किया।

21. विदेशी पूँजी के एक बड़े अवशोषक के रूप में भारत इन वैश्विक प्रवृत्तियों के प्रति असुरक्षित बना रहा है। लेकिन, यह केवल भारत की समस्या नहीं थी। अनेक इएमई पर इसका प्रभाव हुआ, अलबत्ता, विभिन्न अंशों में घरेलू समष्टिआर्थिक स्थितियों की दृष्टि से, विशेष रूप से चालू खाता घाटा कुछ हद तक नरम हुआ या टेपरिंग घोषणा से उत्पन्न प्रतिवात से वह प्रबलित हुआ।

संरचनात्मक कारक

22. ये प्रवृत्तियाँ फेड के वक्तव्य के परिणामस्वरूप बढ़ती वैश्विक जोखिम विमुखता और पूँजी प्रवाह के बिगड़ते वातावरण के भय से प्रज्वलित हुई। तथापि, ऐसे कछ घरेलू संरचनात्मक कारक थे, जिन्होंने इन प्रवृत्तियों को गंभीर बना दिया। इस संबंध में प्रमुख कारक था उच्च व्यापार और चालू खाता घाटा सहित भारत का बाह्य क्षेत्र कार्य-निष्पादन। बाह्य क्षेत्र में ह्रास, जो वर्ष 2011-12 की तीसरी तिमाही मे आरंभ हुआ, वह बना हुआ है। भारतीय अर्थव्यवस्था पर बाह्य स्थितियों का प्रभाव मुख्य रूप से व्यापार सरणी के माध्यम से और अभी हाल में वित्त एवं विश्वास सरणी के माध्यम से स्पष्ट हुआ। यद्यपि भारत के निर्यात में गिरावट वर्ष 2011-12 के दौरान अक्तूबर माह में दिखने लगी, इस गिरावट का प्रभाव प्रमुख व्यापारिक भागीदार देशों में भारत के निर्यात के संबंध में 2012-13 में अधिक स्पष्ट हुआ। वर्ष 2012-13 के दौरान, वणिक माल निर्यात में 1.8 प्रतिशत का संकुचन हुआ, जबकि वर्ष 2011-12 में इसमें 21.8 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई थी। प्रमुख भागीदार देशों को निर्यात में वृद्धि या तो कम हुई या वर्ष 2012-13 में गिरावट आयी। विशेष रूप से, व्यापारिक भागीदारों, यथा, इयु, चीन, सिंगापुर, हांगकांग और जापान को निर्यात महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित हुए। भले ही निर्यात में मंदी की प्रवृत्ति वर्ष 2013-14 की पहली तिम्ाही में बनी रही, फिर भी जुलाई 2013 से इसमें पुनःप्राप्ति के संकेत दिखाई दिये। वर्ष 2012-13 में घरेलू अर्थव्यवस्था में गिरावट के बावजूद, भारत के वणिक माल आयात में सीमांतिक वृद्धि हुई। यद्यपि गैर तेल गैर स्वर्ण आयात में वर्ष 2012-13 में कमी हुई, पेट्रोलियम, तेल एवं लुब्रिकेंट्स (पीओएल) तथा स्वर्ण आयात उत्थित स्तर पर रहे। इसके चलते व्यापार घाटा में बढ़ोतरी हुई, जो वर्ष 2011-12 में 183 बिलियन अमरीकी डालर का हुआ था और वर्ष 2012-13 में बढ़ कर 191 बिलियन अमरीकी डालर का हो गया। सेवाओं के निर्यात में

महत्वपूर्ण गिरावट और उच्चतर आय भुगतान के साथ बड़े वणिक माल व्यापार घाटा के चलते सीएडी वर्ष 2012-13 में और बढ़ गया। वर्ष 2013-14 की पहली तिमाही में सीएडी जीडीपी के 4.9 प्रतिशत पर ऊँचा था, लेकिन उम्मीद है कि बाद की तिमाहियों में यह काफी कम होगा।

23. विगत अतीत में निवल निवेश आय में कमी आयी, जो विदेशी मुद्रा रिज़र्व पर न्यून ब्याज/बट्टा आय को और एनआरआइ जमाराशियों, बाह्य वाणिज्यिक उधार तथा अल्पावधि व्यापार ऋणों सहित बढ़ते बाह्य ऋण पर ब्याज भुगतान में बढ़ोतरी को प्रतिबिंबित करता है। सीएडी/जीडीपी अनुपात वर्ष 2012-13 की तीसरी तिमाही में 6.5 प्रतिशत की ऐतिहासिक ऊँचाई पर पहुँचा, जिसके बाद चौथी तिमाही में यह कम हो कर 3.6 प्रतिशत हुआ। समग्रतः देखा जाये तो जीडीपी की तुलना में सीएडी का अनुपात वर्ष 2012-13 में 4.8 प्रतिशत था, जबकि वर्ष 2011-12 में यह 4.2 प्रतिशत था। इस स्तर पर सीएडी भारत के लिए अनुमानित धारणीय स्तर से काफी ऊपर था और वह हाल की अवधि में एक प्रमुख समष्टिआर्थिक जोखिम कारक के रूप में उभर कर सामने आया है। अनुभव ने यह दर्शाया है कि सीएडी एक न्यून वृद्धि के वातावरण में भी काफी बढ़ सकता है, यदि आपूर्ति जन्य बाध्यताएँ वृद्धि और बाह्य व्यापार, दोनों को प्रभावित करें, जैसी स्थिति हमारे लिए हुई है। उच्चतर सीएडी के साथ अस्थिर पूँजी प्रवाहों के अनुपात में बढ़ोतरी जुड़ी हुई थी। कुल पूँजी प्रवाह की तुलना में ये पूँजी प्रवाह, जिनमें एफआइआइ और अल्पावधि ऋण शामिल थे, वर्ष 2012-13 में कुल पूँजी प्रवाह के आधे के लिए जिम्मेवार थे। इससे यह पता चलता है कि बढ़ते सीएडी को कम करने के लिए अल्पावधि पूँजी प्रवाह पर निरंतर निर्भर रहना पड़ता है, जिससे प्रतिकूल वैश्विक वित्तीय स्थितियों के परिदृश्य में अर्थव्यवस्था की सुभेद्यता बढ़ सकती है।

24. जैसे-जैसे हाल की घटनाओं का खुलासा होता गया, वैसे-वैसे कारपोरेटों और बैंकों के तुलनपत्र पर विनिमय दर मूल्यह्रास के प्रभाव के बारे में चिंता सामने आती गयी। जबकि देश में बैंकों का विनिमय दर उतार-चढ़ाव के प्रति प्रत्यक्ष एक्सपोजर सीमित है, यही तथ्य उन कारपोरेटों के बारे में सही नहीं है, जिनकी समुद्रपार ऋणग्रस्तता पिछले कुछ वर्षों में बढ़ी है। ऐसे एक्सपोजरों ने, जो कुछ हद तक हेज-रहित होते हैं, कारपोरेट और (अप्रत्यक्ष रूप से) बैंक तुलनपत्र को तीव्र विनिमय दर उतार-चढ़ाव के प्रति सुभेद्य बना दिया।

25. राजकोषीय घाटे के आकार के बारे में और राजकोषीय घाटे की लक्ष्य-च्युति की संभावना के बारे में चंता होने लगी, यद्यपि सरकार असंदिग्ध रूप से प्रतिबद्ध है कि वह राजकोषीय घाटे के लक्ष्य में कोई भंग नहीं होने देगी। आपूर्ति पक्ष की बाधाएँ, जिनमें आधारभूत संरचना और नियंत्रण के मुद्दे शामिल हैं, वृद्धि पर भारी पड़ीं, भले ही जीडीपी वृद्धि में हाल की तिमाहियों में गिरावट आयी। आपूर्ति पक्ष कारकों ने यह भी सुनिश्चित किया कि मुद्रास्फीति ऊँची बनी रहे और इसने वृद्धि को प्रोत्साहित करने के मौद्रिक नीति उपायों को बाधित किया। यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती गयी कि संरचनात्मक कारकों पर ध्यान देने के लिए बहुत कुछ किया जाना आवश्यक होगा।

जोखिमें और चुनौतियाँ

26. हाल की घटनाओं ने अनेक जोखिमों को रेखांकित किया और अनेक चुनौतियाँ खड़ी की। अर्थव्यवस्था के लिए, नीति-निर्माताओं के लिए, और मैं निश्चित रूप से कहता हूँ, वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए। मैं इनमें से कुछ के बारे में चर्चा करता हूँ :

i. पहली चुनौती हाल के वैश्विक हलचल के बीच वित्तीय स्थिरता बनाये रखने और बाजारों में, जो अंतर्संबद्ध हैं और वैश्विक रूप से एकीकृत हैं, समष्टिआर्थिक और विनियामक नीति संचालित करने के संदर्भ में सामने आयी। वैश्विक वित्तीय संकट, यूरो क्षेत्र सरकारी ऋण संकट और पिछले कुछ महीनों में मुद्रा बाजार में अस्थिरता ने जोर-शोर से यह प्रदर्शित किया कि किस प्रकार बाह्य गतिविधियाँ हमारी घरेलू समष्टिआर्थिक स्थिति को जटिल, अनिश्चित और यहाँ तक कि मनमाने ढंग से प्रभावित करती हैं। अपनी नीतियाँ बनाने में हमें बाह्य गतिविधियों पर, विशेष रूप से हमारी समष्टि अर्थव्यवस्था पर उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की नीतियों के अधिप्लव प्रभाव को ध्यान में रखना होता है। यह बात और स्पष्ट होगी, जैसे-जैसे विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारत का एकीकरण बढ़ेगा। निस्संदेह, वैश्वीकरण एक दुधारी तलवार है। इसके साथ लागत और लाभ, दोनों आते हैं।

ii. हाल के अनुभव से एक बार फिर यह पता चला कि एक बाजार की सुभेद्यता दूसरे बाजार तक विद्युत गति से प्रसरित होती है, जिसके चलते अक्सर नयी चुनौतियाँ खड़ी होती हैं, जबकि पूर्व की चुनौतियों पर ध्यान दिया जाना शेष रहता है। रिज़र्व बैंक ने विदेशी मुद्रा बाजार में अस्थिरताओं पर ध्यान देने के लिए चलनिधि और ब्याज दर सरणी का उपयोग करने की चेष्टा की। इसके परिणामस्वरूप दीर्घावधि आय में तीव्र वृद्धि हुई और इसने मुद्रा और सरकारी प्रतिभूति बाजारों की कार्यपद्धति को प्रभावित किया, जिससे आय में अनुपातहीन वृद्धि को रोकने के लिए बाजार में अनेक उपाय करने पड़े तथा बैंकों को उच्च आय का प्रबंध करने के लिए विवेकपूर्ण उपाय करने पड़े। वृद्धि पर उच्च ब्याज दर के संपार्श्विक प्रभाव के बारे में भी चिंता हुई।

iii. हाल की घटनाओं ने फिर से पूँजी प्रवाह का प्रबंध करने के लिए पूँजीगत नियंत्रण की आवश्यकता और प्रभावकारिता पर ध्यान केंद्रित कराया है। इसने पूँजी लेखा उदारीकरण के लाभ-लागत के बारे में प्रश्न खड़े किये हैं। लंदन बिजनेस स्कूल[6] के हेलेन रे द्वारा प्रकाशित हाल के एक पत्र में इस तथ्य को आलोकित किया गया है कि नियत विनिमय दर, एक खुला पूँजीगत लेखा और एक स्वतंत्र मौद्रिक नीति की असंभव ट्रिनिटी अब अप्रासंगिक हो गयी है। आज जो प्रासंगिक है, वह है डाइलेमा या ''असंभव ड्युओ''। मुक्त पूँजी प्रवाह का अनिवार्य रूप से अर्थ मौद्रिक नीति की स्वतंत्रता का क्षय होना होगा।

iv. अभी हाल तक भारत में ऋण बाजारों में बहुत अंश तक विदेशी निवेश की अनुमति नहीं दी जाती थी। हाल के वर्षों में बाजार को विदेशी निधियों के लिए धीरे-धीरे खोला गया। विडंबना यह है कि हाल के महीनों में पूँजी बहिर्वाह ठीक-ठीक इन्हीं बाजारों से हुआ, जिसने इस विश्वास को फिर से पुष्ट किया कि ऋण बाजारों को खोले जाने में सावधानी बरतने की जरूरत है।

v. वास्तव में रिज़र्व बैंक ने निवासियों द्वारा पूँजी बहिर्वाह को सीमित करने के लिए पहले से अधिकृत कुछ उपाय किये, लेकिन इन्होंने किसी न किसी तरीके से अर्थव्यवस्था में रुझानों को प्रभावित किया। जिसने विश्वास सरणी के महत्व को आलोकित किया। आगे बढ़ते हुए, पूँजीगत लेखा का प्रबंध करने की चुनौती यह सुनिश्चित करने की होगी कि किये गये उपाय सूक्ष्म अंतर के साथ हों, ताकि ये उपाय ही स्थिति को और उत्तेजित न कर दें।

vi. हाल की घटनाओं ने विदेशी मुद्रा आरक्षित निधियों की पर्याप्तता की ओर फिर से ध्यान केंद्रित कराया है। रिज़र्व बैंक ने हाल के वर्षों में बाजार को मुद्रा का स्तर निश्चित करने की अनुमति दी है। हस्तक्षेप कभी-कभार किये जाते रहे हैं और वे भी तब, जब अनिवाार्य रूप से अत्यधिक अस्थिरता का प्रबंध किया जाना हो। तथापि, हाल के महीनों में, अधिक हस्तक्षेप करना विदेशी मुद्रा बाजार में बढ़ते विक्षोभ को देखते हुए आवश्यक हो गया। हम समझते हैं कि ऐसा ही अनुभव अन्य उभरते बाजारों में भी हुआ है।

vii. अपतटीय या एनडीएफ बाजारों की भूमिका पर भी उन मुद्राओं के लिए, जो पूर्णतया परिवर्तनीय नहीं बनी हैं, हाल की घटनाओं के संदर्भ में वाद-विवाद किया जा रहा है। रिज़र्व बैंक[7] में कराये गये एक अध्ययन से पता चलता है कि हाजिर और एनडीएफ बाजारों के बीच दीर्घावधि संबंध होता है। रुपया-मूल्यवृद्धि के दौरान यह संबंध सामान्यतः द्वि-दिशात्मक होता है। तथापि, रुपया-मूल्यह्रास की अवधि के दौरान यह संबंध एनडीएफ से तटवर्ती बाजार तक एक-दिशात्मक हो जा सकता है, जिसका संभावित परिणाम अंतरराष्ट्रीय आघातों का वृहत्तर अधिप्लव हो सकता है। इसने इस बात की आवश्यकता उत्पन्न की है कि देशों के बीच अब तक जो नीतिगत समन्वय होता रहा है, उससे अधिक समन्वय होना चाहिए, विशेष रूप से इसलिए, क्योंकि अनेक इएमई की मुद्राओं, जिनमें भारत की मुद्रा शामिल है, को आधिकारिक तौर पर वर्तमान

[6] 'डाइलेमा नॉट ट्राइलेमा : दि ग्लोबल फाइनैंशियल साइकिल एंड मॉनेटरी पॉलिसी इंडपेंडेंस'। प्रोफेसर हेलेन रे, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, जैक्सन होल सिंपोजियम, अगस्त 2013

[7] भारतीय रिज़र्व बैंक, वार्षिक रिपोर्ट, 2012।13 (http://rbidocs.rbi.org.in/rdocs/AnnualReport/PDFs/P1_02ECRV220813.pdf)।

पूँजीगत लेखा प्रबंधन ढाँचे के अंतर्गत समुद्रपार लेन देन करने की अनुमति नहीं होती है।

viii. दूसरी चुनौती केंद्रीय बैंक संप्रेषण के संदर्भ में उत्पन्न हुई है, विशेष रूप से अस्थिर अवधि में। हमारा अनुभव यह रहा है कि जब बाजार अस्थिर होते हैं और उनकी प्रवृत्ति अधोमुखी होती है, तब कोई खबर नहीं होना अच्छी बात होती है। प्रत्येक संधिकाल में बाजार द्वारा प्रतीक्षित सबसे खराब समय की प्रत्याशा में अनेक नीतिगत उपायों का गलत अर्थ लगाया गया है। हम पर आरोप लगाया गया है कि हम रुपये की अस्थिरता पर ध्यान देने में गंभीर नहीं होते, हम 'ऑपरेशन ट्विस्ट' के अपने ही रूपांतरण की चेष्टा करते हैं, हम नीति के संबंध में फ्लिप-फ्लॉपिंग करते हैं, आदि। वास्तव में, हमारे उपायों की प्रभावोत्पादकता का परीक्षण होना अभी बाकी है और मैं आशा करता हूँ कि मैं जल्दीबाजी नहीं करता, क्योंकि पिछले कुछ सप्ताहों से हमारे बाजारों में कुछ सामान्य स्थिति दिखाई देने लगी है।

ix. अंत मे, भारत के लिए सचमुच सबसे बड़ी चुनौती होगी संरचनात्मक सुभेद्यता पर ध्यान देना, जिसने वैश्विक गतिविधियों के प्रभाव को उत्तेजित किया। यह अस्थिरता उत्पन्न करने के वैश्विक प्रतिवातों के प्रति अर्थव्यवस्था की समुत्थानशीलता को बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण होगा।

रजत रेखा (आशा की किरण)

27. उच्च व्यापार घाटा और चालू खाता घाटा से उत्पन्न सुभेद्यताओं पर ध्यान देने के लिए सरकार और रिज़र्व बैंक ने हाल के समय में विभिन्न प्रकार के उपाय किये हैं। इन उपायों का मुख्य रूप से लक्ष्य था निर्यात बढ़ाना, आयात को कम करना और विदेशी पूँजी प्रवाह को बढ़ाना। आयातों पर लगाम लगाने के लिए, विशेष रूप से स्वर्ण आयात पर, हाल के महीनों में अनेक उपाय किये गये हैं। इनके परिणामस्वरूप वर्ष 2012-13 की चौथी तिमाही में सीएडी में महत्वपूर्ण नरमी दिखाई पड़ी है। यद्यपि सीएडी वर्ष 2013-14 की पहली तिमाही में जीडीपी के 4.9 प्रतिशत पर उच्च था, आगे बढ़ते हुए यह उम्मीद की जाती है कि सीएडी में महत्वपूर्ण रूप से नरमी आयेगी, जिसका कारण है स्वर्ण का घटा हुआ आयात, बढ़ता निर्यात, विशेष रूप से उन्नत देशों की आर्थिक स्थितियों के संदर्भ में और व्यापार शेष पर रुपया मूल्यह्रास का विलंबित प्रभाव। हमारी विदेशी मुद्रा प्रारक्षित निधियों को पर्याप्त माना जा सकता है, जिसमें सीएडी को 35 महीनों तक रिज़र्व रक्षा दी जा सकती है। सरकार ने राजकोषीय सुदृढ़ीकरण के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दुहरायी है और यह उम्मीद की जाती है कि लक्ष्य पूरे किये जायेंगे। घरेलू वृद्धि में भी उछाल की उम्मीद यह देखते हुए होती है कि बचत दर अभी भी उच्च स्तर पर है, इस वर्ष मानसून अच्छा रहा है और निवेश बढ़ाने तथा विदेशी निवेश प्रवाह आकर्षित करने के लिए नीति-निर्माताओं द्वारा उपाय किये जा रहे हैं। सचमुच जोखिमें अभी भी हैं। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में समंजनकारी मौद्रिक नीति से निकास का अधिप्लव, जिसकी आज हम चर्चा कर रहे हैं, और भू-राजनीतिक तनाव और उनका तेल की कीमतों पर प्रभाव।

आगे का मार्ग

28. मैंने 22 मई और अगस्त 2013 के पहले सप्ताह के बीच के घटनाक्रम का उपयोग गैरपरंपरागत मौद्रिक नीतियो से निकास से होने वाली जोखिमों का वर्णन करने के लिए किया है। ऐसा लगता है कि बाजारों में कुछ शांति लौटी है, विशेष रूप से 18 सितंबर को फेडरल रिज़र्व के इस निर्णय के बाद कि यह टेपरिंग प्रारंभ नहीं करेगा। लेकिन जो बात स्पष्ट है, वह यह है कि टेपरिंग प्रारंभ किये जाने को केवल स्थगित किया गया है। बाजारों में यह अटकल लगायी जाने लगी है कि फेड कब टेपरिंग आरंभ करेगा। क्या यह अक्तूबर में होगा? क्या यह दिसंबर में होगा? या फेड 2014 के प्रारंभ होने तक रुकेगा? चूँकि अनिश्चितताएँ बनी हुई हैं, अतः बाजार में अस्थिरता लौट सकती है। अमेरिका में वर्तमान राजकोषीय मुकाबला, जिससे यह जोखिम बनती है कि अमेरिका अपनी ऋण अदायगी में चूक कर सकता है, ने वैश्विक वित्तीय बाजारों के लिए और अमेरिका में तथा अन्य देशों में वृद्धि संबंधी दृष्टिकोण में एक अन्य अनिश्चितता की शुरुआत कर दी है। अतः, यह आवश्यक है कि हम आगे देखें और एक कार्य योजना बनाएँ, आदर्शतः एक वैश्विक कार्य योजना, ताकि जोखिमों पर ध्यान दिया जा सके।

29. हाल की घटनाएँ सावधान रहने के बारे में एक उपयोगी सबक सिखाती हैं, जो उनके लिए भी है, जो निकास का विचार कर रहे हैं और उनके लिए भी, जो किसी अधिप्लव का शिकार होने वाले हैं। सौभाग्य से, दोनों समूहों के लिए प्रोत्साहन व्यापक स्तर पर अच्छे संरेखण में है। दोनों में से कोई भी अव्यवस्थित निकास

नहीं चाहेगा। तथापि, इसकी संभावना नहीं है कि किसी एक देश की नीतिगत आवश्यकताएँ दूसरों के लिए उपयुक्त होंगी, क्योंकि सभी देशों में आर्थिक स्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं और उनके व्यवसाय चक्र पूर्णतः संरेखित नहीं होते हैं। भिन्न-भिन्न देश, जो इस समय गैर परंपरागत मौद्रिक नीति का उपयोग कर रहे हैं, निस्संदेह भिन्न-भिन्न समय पर नीति से निकास चाहेंगे। इएमई और अन्य, जो निकास से प्रभावित होते हैं, भी यह पायेंगे कि यह उनकी तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता। तथापि, कुछ हद तक तुल्यकालिकता का अभाव मददगार हो सकता है, जिससे कुछ समंजन किया जा सकेगा, इसलिए हर कोई तुरंत एक ही दिशा में अग्रसर नहीं हो रहा है।

30. इतिहास में पहले भी समंजनकारी मौद्रिक नीति से निकास के उदाहरण मिलते हैं, जिनकी समीक्षा शिक्षाप्रद हो सकती है। वर्ष 1990-91 के संकट के बाद फेड द्वारा फरवरी 1994 में दरें बढ़ायी गयीं। दरों का बढ़ाया जाना बाजारों के लिए अधिकतर अप्रत्याशित था, नीति दरें अपेक्षाकृत छोटी अवधि के भीतर तेजी से बढ़ायी गयीं। परिणामस्वरूप, बांड आय में तीव्र और सहसा बढ़ोतरी हुई, जिसका महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय अधिप्लव प्रभाव वैश्विक वित्तीय बाजारों पर पड़ा। इसके विपरीत, वर्ष 2004 में समंजनकारी मौद्रिक नीति से फेड के निकास के बारे में पहले से ही अनुमान लगा लिया गया था। यह भी, कि बढ़ोतरी धीरे-धीरे की गयी थी। इस समय के आसपास वैश्विक बाजारों पर प्रभाव महत्वपूर्ण रूप से सीमित था, यदि 1994-95 के चक्र से तुलना की जाये।

31. तथापि, जिस पैमाने और परिमाण पर इस समय निकास का सामना किया जा रहा है, उसका अनुभव नहीं है, जिसका तात्पर्य यह है कि निकास से उत्पन्न जोखिम का प्रबंध अधिक सावधानी से किया जाना होगा। सभी मौजूदा केंद्रीय बैंकरों के लिए प्रमुख संदेश और प्रमुख चुनौती क्रय, होल्डिंग और नीति दरों के आशय के बारे में स्पष्ट और पारदर्शी संसू चना की आवश्यकता है। निस्संदेह, जिस हद तक बाजार अति आशावादी हो चुके हैं, उसमें किसी संसूचना के लिए आस्ति-कीमतों और विनिमय दरों में महत्वपूर्ण और सहसा समंजन आवश्यक होगा। यह कारगर संसूचना के तर्क को दुर्बल नहीं करता है। अपारदर्शी संसूचना या परस्पर विरोधी संकेत संभावित समायोजन को रोक नहीं सकते और बाजारों में अधिक अस्थिरता को प्रेरित कर सकते हैं। जो स्पष्ट नहीं है, वह यह है कि हाल की बाजार प्रतिक्रियाओं ने अधिक प्रतिक्रिया दिखाई, पहले ही प्रतिक्रिया दिखा दी, या आगे क्या होने वाला है, इसका छोटा-सा संकेत दिया। हाल की घटनाओं से यह स्पष्ट है कि वैश्विक नीति समन्वय प्रक्रिया ने मौद्रिक नीति पर अब तक जितना ध्यान दिया है, उससे अधिक ध्यान देना होगा। इसके लिए चुनौतियाँ हैं। हमें यह रास्ता तलाशना होगा कि इस प्रकार की राष्ट्रीय स्वायत्तता का वृहत्तर अंतरराष्ट्रीय जवाबदेही के साथ संतुलन किया जाये।

32. सर्वांगी महत्वपूर्ण देशों के बीच राजकोषीय नीति के समन्वय की आवश्यकता को अब स्वीकार किया जाता है, विशेष रूप से सभी अर्थव्यवस्थाओं- विकसित और उभरती, में वृद्धि और विकास के दृष्टिकोण से। इसी प्रकार का एक अप्रतिरोध्य मामला है मौद्रिक नीति को रिज़र्व कंट्री करेंसी में एक सहकारी ढाँचे में सम्मिलित किये जाने का। इन मुद्दों की निशानदेही हाल ही में मॉस्को में संपन्न जी-20 देशों के शिखर सम्मेलन में की गयी थी। वास्तव में द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यवस्थाओं को भी टेपरिंग से उत्पन्न जोखिमों पर ध्यान देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ सकती है। हमने हाल ही में जब जापान के साथ अपनी स्वैप व्यवस्था की प्रमात्रा को बढ़ाया, उस समय बाजारों में शांतक प्रभाव देखा गया। ये आकस्मिकता व्यवस्थाएँ होती हैं, जिन्हें प्रयोग करने की उम्मीद हम नहीं करते, लेकिन फिर भी वे एक अवरोधक की सहूलियत प्रदान करते हैं। पिछले महीने छठे चीन-भारत वित्तीय संवाद के बाद जारी संयुक्त वक्तव्य में भी द्विपक्षीय संसूचना और सहयोग के महत्व को स्वीकार किया गया।

33. समाहार करते हुए मैं कुछ ऐसे मुद्दों की निशानदेही करना चाहता हूँ, जिन पर वैश्विक मंचों पर चर्चा किया जाना आवश्यक है। देशो को किस हद तक अधिप्लवों का संज्ञान लेना चाहिए? क्या देशों द्वारा अधिप्लवों का पर्याप्त आंतरीकरण किया जाता है? क्या जिन देशों को वैश्विक वित्तीय प्रणाली के प्रति प्रणालीगत जोखिमों का खतरा होता है, उन्हें ऐसी जोखिमों का शमन करने के लिए अधिक बोझ वहन करना चाहिए? बढ़े हुए सहयोग के पक्ष और विपक्ष में क्या तर्क हैं और ऐसे सहयोग किस रूप में किये जायें- बढ़ा हुआ संवाद, चलनिधि/स्वैप व्यवस्था, द्विपक्षीय करार, आदि।

समापन विचार

34. यह बात अब स्पष्ट है कि पिछले कुछ दशकों की गतिविधियों के परिणामस्वरूप एक ऐसी वैश्विक अर्थव्यवस्था

सामने आयी है, जो निकट से एकीकृत और अंतर्संबद्ध है। वैश्वीकरण के लाभ होते हैं। वास्तव में सीमापार पूँजी प्रवाह के लाभ के विरूद्ध तर्क करना कठिन होता है। लेकिन स्पष्ट रूप से इसके साथ कुछ लागतें जुड़ी होती हैं। वैश्वीकरण की चुनौतियाँ केवल वैश्विक अर्थव्यवस्था के चारों ओर की घटनाओं और गतिविधियों की अनिश्चितताओं से तीव्र होती हैं। हाल के महीनों में हमें रुखाई से और सहसा इन चुनौतियों का सामना करना पड़ा। सौभाग्य से अस्थिरता कम हुई, लेकिन एकमात्र निश्चितता यह है कि अनिश्चितताएँ बनी रहेंगी, भले ही निश्चितता के बारे में अनिश्चितता बरकरार रहे। तथापि, यह महत्वपूर्ण है कि हम अनिश्चितताओं की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार रहें। हमारी संरचनात्मक सुभेद्यता, जिसमें बाह्य और राजकोषीय मोर्चे पर समष्टिआर्थिक असंतुलनों से उत्पन्न सुभेद्यता शामिल है, पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। ऐसा नहीं है कि तब हम वैश्विक आघातों से निरापद हो जायेंगे। अतः, हमें ऐसे आघातों के प्रति अपनी समुत्थान-शक्ति निर्मित करनी होगी, क्योंकि भारत जैसे देश, जिनमें गहरी दरारें हैं, पूँजी-प्रवाह के मनमौजीपन के प्रति अधिक सुभेद्य होते हैं। यह अनिवार्य है कि हमारे पास गहन वित्तीय बाजार हों जो धैर्यपूर्वक ऐसे आघातों को झेल सकें। उदाहरण के लिए, हमें आधारभूत संरचना की आवश्यकता है, जो वस्तुतः बाजार के खिलाड़ियों को प्रोत्साहित करे कि वे अपनी विदेशी मुद्रा और ब्याज दर जोखिमों को अत्यधिक अटकलबाजी में लिप्त हुए बिना कुशलतापूर्वक हेज कर सकें, जिससे व्यष्टि स्तर पर फर्मों को और समष्टि स्तर पर वित्तीय प्रणाली को जोखिम न हो। सर्वोपरि तथ्य यह है कि हमें एक तगड़ा राष्ट्रीय तुलनपत्र बनाने का प्रयास करना है, जिसमें वृद्धि और विकास पर ध्यान दिया जाये, जो निवेशकों, घरेलू और अंतरराष्ट्रीय, दोनों के हितों को बनाये रखे और हमारी अर्थव्यवस्था और वित्तीय बाजारों को आघात-सह बनाये।

35. मैं एक बार पुनः दिल्ली विश्वविद्यालय, साउथ कैंपस के व्यावसायिक अर्थशास्त्र विभाग को बधाई देता हूँ कि उन्होंने इस कन्वेंशन के लिए बहुत ही प्रासंगिक विषय को चुना। मैं कन्वेंशन की हर तरह से सफलता की कामना करता हूँ। धन्यवाद!